सीखने में संसाधनों की भूमिका

✍ निशी

स्कूल के नाम से जो छवि दिमाग में उभरती है उसमें इमारत, कमरे, बैठक व्यवस्था, शिक्षण सामग्री तथा बच्चे एवं शिक्षक जैसी छवियों का सम्मिश्रण होना लाजमी है। कई बार भवन एवं कमरों के बगैर भी ऐसा स्थान संभव है जहां शिक्षण कार्य होता हो और इसको भी स्कूल कह सकते हैं। इसका मतलब स्कूल होने के लिए अनिवार्य है शिक्षक एवं बच्चों का होना और उनके मध्य होने वाला शिक्षण कार्य। मैं यह बात इसलिए रेखांकित कर रही हूं कि सामान्यतया या आम बोलचाल में 'शिक्षण' का जिक्र उभरकर तो नहीं आता परंतु उसे उसमें शामिल मान लिया जाता है।

स्कूल अर्थात ऐसा स्थान जहां पढ़ाई होती है यानि कि जहां बच्चे सीखते हैं। यहां प्रश्न उठ सकता है कि सीखना तो निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। परंतु यहां यह ध्यान रखना जरूरी है कि स्कूल में सीखने का तात्पर्य सुविचारित पाठ्यचर्या के अनुसार चयनित क्षमताओं, कौशलों एवं समझ के विकास से है अर्थात जहां सुविचारित ढंग से चीजों के बारे में सीखना सिखाया जाता है। खैर मैं यहां स्कूल में सीखने–सिखाने के तरीकों एवं उसके उद्देश्यों की बहस में न जाते हुए स्कूल में उपलब्ध संसाधनों और उनका गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के साथ संबंध को देखने का प्रयास करूंगी अर्थात क्या गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और भौतिक संसाधनों के बीच कोई रिश्ता है। इन दोनों पहलुओं के बीच किस तरह का एवं किस हद तक रिश्ता देखा जा सकता है या यह केवल खामख्याली है। इस प्रश्न पर चर्चा करने से पहले मैं दो स्कूलों के चित्र खींचने का प्रयास करती हूं।



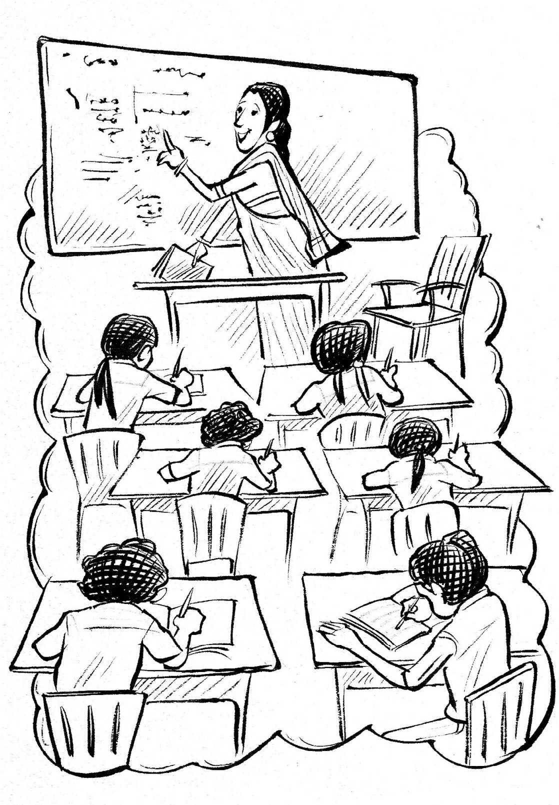
समीरा पब्लिक स्कूल

तहसील मुख्यालय पर स्थित। विशाल भवन, लगभग 20 कमरे। बंटवारा इस प्रकार है : एक कमरा शिक्षकों के बैठने के लिए, एक प्रधानाध्यापक का, दो प्रयोगशालाएं, एक स्टोर और शेष कमरे शिक्षण हेतु। इमारत के आगे काफी बड़ा खाली मैदान है, जहां बच्चे खेलते हैं और यहां कुछ खेलों के कोर्ट बने हुए हैं। वातानुकूलित कक्ष और वाटर कूलर का प्रबंध। बच्चों एवं शिक्षकों के लिए ड्रेसकोड। कुल मिलाकर शिक्षण हेतु आदर्श व्यवस्थाएं।

प्रातः 9 बजे पहली घंटी बजने के साथ ही कक्षा–कक्ष के बाहर पंक्तियां बननी शुरू होती हैं और कक्षा मॉनिटर की निगरानी में अलग–अलग पंक्तियों में बच्चों को खुले मैदान में सेना के जवानों की भांति लाईन लगाकर खड़ा किया जाता है। प्रातःकालीन सभा के लिए 30 मिनिट निर्धारित हैं

जिसमें बच्चे प्रार्थना करते हैं, हाजिरी होती है, कभी–कभी प्राचार्य का भाषण होता है और फिर सभी अपनी–अपनी कक्षा में लौट जाते हैं।

अब एक नजर डालते हैं शिक्षण प्रक्रिया पर। आठवीं कक्षा, कालांश एक, विषय विज्ञान। शिक्षिका के पहुंचने पर बच्चे गुड मार्निंग जैसी रूटीन प्रक्रियाएं करते हैं। शिक्षिका के निर्देश पर विज्ञान की किताब निकालते हैं। शिक्षिका अध्याय आठ खोलने का निर्देश देती है। एक बच्चे को खड़ा करती है और पाठ पढ़ने के लिए कहती है। बच्चा पूरा पाठ पढ़ता है। कहीं–कहीं शिक्षिका पाठ की लाईनों को दोहरा देती है और मुश्किल शब्दों के अर्थ बता देती है। यह अलग बात है कि ये अर्थ भी उतने ही मुश्किल होते हैं। अंत में शिक्षिका पाठ के प्रश्नों के उत्तर लिखवा देती है। बच्चों को दोहरान करने के लिए कहती है और पाठ का सारांश बता देती है कि कोशिका जीवन की संरचनात्मक इकाई है। इस तरह से यह पाठ एक ही दिन में खत्म हो जाता है। शिक्षिका बच्चों को पाठ में दिए गए प्रश्नों व उनके उत्तरों को कॉपी में लिखने का निर्देश देती है और इसी के साथ कालांश समाप्त हो जाता है।



यह सारी प्रक्रिया यांत्रिक रूप से चलती नजर आती है जिसमें बच्चों के न तो कोई सवाल और न ही जिज्ञासाएं हैं और न ही सीख लेने के बाद का आनंद। न ही शिक्षिका ऐसा कोई प्रयोग या कोशिश करती है जिससे बच्चों में सवाल करने, कल्पनाएं बनाने या स्वयं की कोशिशों से निष्कर्षों तक पहुंचने का रास्ता मालूम होता। दूसरे शब्दों में कहूं तो आत्मनिर्भर या स्वयं से सोचने वाले शिक्षार्थी बनने की तरफ बढ़ने का रास्ता यहां दिखाई नहीं देता तथा विज्ञान एवं आम जीवन का रिश्ता भी यहां पर समझाने की कोशिशें नहीं दिखाई देतीं। यहां विज्ञान पढ़ने का अर्थ है कि एक कक्षा से अगली कक्षा में चले जाना। यह एक उदाहरण है जिसे आप अन्य विषयों पर भी इसी तरह से लागू करके समझ सकते हैं कि अन्य विषयों का शिक्षण भी इस स्कूल में कुछ इसी तरह से होता है।

राजकीय माध्यमिक विद्यालय

उसी कस्बे का एक दूसरा स्कूल है राजकीय माध्यमिक विद्यालय। इमारत बहुत बड़ी नहीं है। लगभग 15 कमरे हैं। गोलाकार आकृति में बने होने के कारण कमरे एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं। सभी कमरों में पर्याप्त खुलापन, हवा एवं प्रकाश की पर्याप्त व्यवस्था। कमरों का उपयोगः एक प्रयोगशाला, एक शिक्षक कक्ष, प्राचार्य कक्ष एवं शिक्षण हेतु अन्य कमरे। साफ–सुथरे शौचालय। पानी के लिए 2 मटके। स्कूल के खुलने का समय सुबह 9 बजे। स्कूल खोलने की जिम्मेदारी जल्दी आने वाले बच्चों एवं अध्यापकों की है। स्कूल में पहले से काम की योजना तय होती है जिसमें बच्चों की भागीदारी होती है। बच्चों द्वारा योजनानुसार पहले अपने कमरे एवं आंगन की सफाई करना फिर सभी का आंगन में इकट्ठा होना। तीन समूहों में प्रातःकालीन सभा। सभी एक–दूसरे से संवाद कर सकें, इसलिए गोल घेरा बनाकर बैठना। शिक्षकों एवं बच्चों का मिलकर कुछ बालगीत, गीत गाना, कविताएं सुनाना, अभिनय करना आदि। ये गतिविधियां हर रोज बदलती हैं। सप्ताह में एक दिन बच्चे सामूहिक सभा करते हैं जिसमें स्कूल की समस्याओं आदि पर बातचीत एवं निपटारा किया जाता है। सामूहिक सूचनाएं दी जाती हैं। सुनने–सुनाने का यह कार्यक्रम लगभग आधे घंटे चलने के पश्चात् सभी बच्चे अपनी–अपनी कक्षा में जाते हैं। स्कूल में ड्रेस कोड है परंतु उसकी बहुत अनिवार्यता नहीं है, अधिकांश

समय बच्चे अपनी मर्जी से ही कपड़े पहनकर आते हैं। बच्चे अपने बैठने के लिए टाट–पट्टी घर से लेकर आते हैं।

एक नजर कक्षा में चलने वाली शिक्षण प्रक्रिया पर। कक्षा आठ, विषय विज्ञान। विज्ञान शिक्षिका आज कोशिका नामक पाठ को पढ़ाने की शुरुआत करती है। पहले वह कोशिका के बारे में कुछ सामान्य बात करती है। उसके लिए वो पहले बच्चों को सूक्ष्मदर्शी का उपयोग कैसे करते हैं यह बताने का निर्णय करती है। एक बच्चा प्रयोगशाला की तरफ दौड़कर सूक्ष्मदर्शी लेने जाता है, शिक्षिका सभी बच्चों को सूक्ष्मदर्शी के उपयोग व इस्तेमाल करने के तरीके के बारे में बताती है, कुछ स्लाइड्स का अवलोकन भी कराती है। दूसरे दिन इसी विषय के कालांश में शिक्षिका प्याज लाती है और बच्चों को प्याज की झिल्ली की स्लाइड बनाकर दिखाती है। सभी बच्चों को प्याज की झिल्ली की एक–एक स्लाइड बनाने के लिए कहा जाता है, जिसे बनाकर वे उसका अवलोकन सूक्ष्मदर्शी में करते हैं। इसी तरह से शिक्षिका अन्य वस्तुओं जैसे पालक की झिल्ली, मनी प्लांट की पत्ती की झिल्ली, गाल की कोशिकाओं आदि का अवलोकन भी बच्चों को करवाती है। इन सभी अवलोकनों में बच्चे पाते हैं कि ये सभी चीजें कोशिकाओं से मिलकर बनी हैं। इस पूरी प्रक्रिया के दौरान बच्चे बहुत अस्त–व्यस्त दिखाई देते हैं; कभी अभिरंजक तो कभी ब्रश को लेने के लिए इधर–उधर दौड़ते हुए नजर आते हैं। सभी बच्चे अपने–अपने कामों में व्यस्त हैं। और वे सभी अपने काम को बताए अनुसार पूरा करते हैं, उसके बाद शिक्षिका उनके साथ साझा करती है कि सूक्ष्मदर्शी में अन्य सजीवों का अध्ययन करने पर वे भी कोशिकाओं से मिलकर बने पाए गए हैं। वह बताती है कि आगे की कक्षाओं में वे अन्य जीवों के बारे में और ज्यादा विस्तार से अध्ययन करेंगे। अपने अवलोकनों एवं बातचीत के आधार पर बच्चे इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि सभी जीव कोशिकाओं से मिलकर बने होते हैं और इसीलिए कहते हैं कि कोशिका जीवन की संरचनात्मक इकाई होती है। सबसे आखिर में बच्चे पाठ के अंत में दिए गए सवालों के जवाब अपने आप बनाकर लिखते हैं, जहां जरूरत लगती है वहां शिक्षिका उनमें सुधार करवा देती है। इस तरह से बच्चे अवलोकन करते हुए, किए गए अवलोकनों में पैटर्न ढूंढ़ते हुए किसी एक निष्कर्ष तक पहुंचते हैं और इस दौरान एक–दूसरे की मदद भी करते हैं।



अच्छी शिक्षा के निहितार्थ

यहां पर दो स्कूलों के उदाहरण दिए गए हैं। आज हम देख रहे हैं कि एक तरफ जहां पर सरकारी स्कूलों में लगातार बच्चों की संख्या कम हो रही है और बच्चों के सीखने पर लगातार सवाल उठ रहे हैं तो दूसरी तरफ पर एक आम धारणा बनती जा रही है कि अच्छी शिक्षा का मतलब है निजी स्कूल। इसलिए जो अभिभावक निजी स्कूलों का खर्च वहन कर सकते हैं, उनमें से अधिकांश के बच्चे वहां पढ़ते हैं। इन उदाहरणों में कही गई बात आपको काल्पनिक लग सकती है, परंतु आप ढूंढ़ेंगे तो ऐसे स्कूलों का मिलना मुश्किल भी नहीं है। आप दाखिले के दिनों में निजी स्कूलों द्वारा निकाले जाने वाले इश्तहारों को याद करें। आप पाएंगे कि उनमें अभिभावकों को रिझाने के लिए संसाधनों की बात को प्रमुखता से रखा जाता है। इसलिए यहां एक निजी एवं राजकीय स्कूल को उदाहरण के तौर पर सोच–समझकर

लिया गया है, ताकि यह देखा जा सके कि दोनों की अपनी कुछ विशेषताएं एवं कुछ सीमाएं हैं।

अब सवाल यह उठता है कि वर्तमान परिदृश्य में हम किस स्कूल को अच्छा स्कूल मानेंगे। जाहिर सी बात है कि इन दो उदाहरणों में से कक्षा–कक्ष में चलने वाली प्रक्रियाओं को देखते हुए दूसरे स्कूल को अधिक बेहतर स्कूल की श्रेणी में रखा जाएगा बावजूद इसके कि पहला स्कूल संसाधनों से लैस है। क्योंकि स्कूल का मुख्य मकसद सिखाना है। अब सवाल यह है कि दूसरे स्कूल में चलने वाली प्रक्रियाओं को अधिक बेहतर क्यों माना जा रहा है? इस पर हम एक–एक कर बात करेंगे। यदि पहले स्कूल में चलने वाली प्रक्रियाओं को समझें तो वो इशारा करती हैं कि दी गई सूचनाओं को बच्चे लगभग ज्यों का त्यों मान लेते हैं। उन्हें मानने के पीछे अधिकांश समय बच्चों के अपने कोई आधार नहीं होते। चाहे वह प्रातःकालीन सभा के लिए लाईन लगाकर खड़ा होना हो या फिर पाठ्यपुस्तक में दी गई सूचनाओं को रटकर सुना या लिख देने का कार्य करना हो। विज्ञान की कक्षा में भी बच्चों की ज्ञान निर्माण में किसी तरह की कोई सक्रिय भागीदारी नजर नहीं आती और न ही उस ज्ञान को उनके जीवन से जोड़ने का प्रयास किया जाता है। जबकि यशपाल कमेटी की रिपोर्ट 'शिक्षा बिना बोझ के' यह कहती है कि ऐसा स्कूली ज्ञान, जिसका स्कूली जीवन के बाहर के जीवन से कोई संबंध नहीं होता, वह बच्चों के लिए बोझ बन जाता है। जिसे परीक्षा में लिखने के लिए बच्चों द्वारा रट तो लिया जाता है परंतु उसके बाद वे उसे भूल जाते हैं। स्कूल में इस तरह की स्थितियों का निर्माण होता है कि बच्चे दो तरह के ज्ञान के साथ जीना सीख लेते हैं स्कूली ज्ञान और रोजमर्रा का व्यवहारिक ज्ञान, जिसका स्कूली ज्ञान के साथ दूर–दूर तक कोई लेना देना ही नहीं होता। उनके हिसाब से स्कूली ज्ञान केवल परीक्षा पास करके डिग्री लेने के काम में आता है।

अब यदि यशपाल समिति रिपोर्ट और उसके बाद आए अन्य शैक्षिक दस्तावेजों को देखें तो वे सब बच्चों की सक्रिय भागीदारी एवं समझकर सीखने पर जोर देते हैं। जब राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (एन.सी.एफ.) 2005 को पढ़ते हैं तो पाते हैं कि वह ज्ञान निर्माण में बच्चों की सक्रिय भागीदारी को सुनिश्चित करने व समझकर सीखने पर जोर देता है। उसके बाद शिक्षक शिक्षा के लिए बनी रूपरेखा



जिसे एन.सी.ई.एफ.टी.ई. 2009 नाम से जाना जाता है, एवं अन्य दस्तावेज तथा शिक्षा के अधिकार कानून में इन संस्तुतियों की सुगबुगाहट महसूस होती है।

एन.सी.एफ. 2005 विज्ञान शिक्षण के मुख्य उद्देश्यों में अवलोकन करना, वर्गीकरण करना, प्रयोग करना, पैटर्न खोजना, मॉडल विकसित करना, तार्किक एवं विवेचनात्मक चिंतन, रचनात्मकता आदि क्षमताओं के विकास की बात करता है। राजकीय स्कूल में चल रही प्रक्रियाएं एन.सी.एफ. 2005 द्वारा सुझाए गए रास्तों पर चलती नजर आती हैं जहां बच्चों द्वारा ज्ञान का निर्माण सक्रिय भागीदारी और समझकर सीखते हुए होता है। बच्चे अवलोकनों के आधार पर पैटर्न पकड़ते हुए निष्कर्ष पर पहुंचते हैं। इस तरह से रचित ज्ञान का उनके जीवन के साथ जुड़ाव भी दिखाई देता है और उसे रटने की जरूरत भी नहीं होती। कक्षा–कक्ष में चलने वाली प्रक्रियाओं के ऊपर दिए गए वर्णनों से यह तो समझ आता है कि राजकीय स्कूल में चलने वाली प्रक्रिया में बच्चों की सक्रिय भागीदारी है जबकि निजी स्कूल में ऐसा नहीं है।

अब चलते हैं उस सवाल पर जिसे आलेख की शुरुआत में रखा था कि क्या स्कूल में उपलब्ध संसाधनों का



पता होता है कि इनका किस तरह से इस्तेमाल किया जाए और न ही बच्चे सामान्यतया उनका इस्तेमाल करते हैं। यदि करें भी तो उससे अवधारणा की स्पष्टता में कोई फायदा नहीं होता है।

कितने जरूरी हैं संसाधन

इसके एक और पहलू पर यहां पर विचार करने की जरूरत है कि स्कूल में वातानुकूलित कक्ष, स्वीमिंग पूल, महंगी–महंगी गणितीय प्रयोगशालाएं जैसे संसाधनों की किस हद तक जरूरत है। कहने का आशय यह है कि शैक्षणिक संसाधनों के अतिरिक्त और किस तरह के संसाधन चाहिए जो स्कूल के संचालन एवं बच्चों के सीखने में भूमिका का निर्वाह कर सकें।

यह तो सही बात है कि ऐसे वातावरण

गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के साथ किसी प्रकार का संबंध होता है। स्कूल में चल रही शैक्षिक प्रक्रियाओं में यह तो नजर आता है कि संसाधनों की उपस्थिति को नकारा नहीं जा सकता, परंतु न्यूनतम एवं अधिकतम तौर पर वे क्या होंगे, इस पर विचार जरूर किया जा सकता है। जैसे वे उपकरण जो सीखने–सिखाने की प्रक्रिया में जरूरी हैं उनका स्कूल में होना लाजमी है जैसे ब्लैकबोर्ड, चॉक, सूक्ष्मदर्शी एवं अन्य ऐसे उपकरण जिनकी दी गई अवधारणा को समझने में अनिवार्य भूमिका होती है।

उदाहरण के लिए बगैर सूक्ष्मदर्शी के आप 'कोशिका' की अवधारणा को बहुत बेहतर तरीके से कक्षा 8 के बच्चे को नहीं समझा सकते। यहां सूक्ष्मदर्शी का अर्थ बाजार में मिलने वाले महंगे सूक्ष्मदर्शी को खरीदने की संस्तुति नहीं की जा रही है। कई प्रयोगों में प्रयुक्त सामग्री का निर्माण बहुत सीमित संसाधनों की मदद से स्कूल या शिक्षक अपने स्तर पर ही कर सकता है। उदाहरण के तौर पर इसी प्रयोग में देखें तो हो सकता है कि कोशिका के अवलोकन हेतु जिन अभिरंजकों की जरूरत होती है वे स्कूली स्तर पर उपलब्ध न हों। ऐसी स्थिति में चाय अथवा कॉफी के पानी अथवा आलता का प्रयोग अभिरंजक के रूप में किया जा सकता है। परंतु समस्या तब होती है जब बहुत सारे संसाधनों के नाम पर स्कूल में ऐसी चीजें भी आती हैं जिनका न तो शिक्षक को

की अपेक्षा करना वाजिब है जिसमें बच्चों को बहुत शारीरिक कष्ट न सहना पड़े व काम करने हेतु समुचित स्थान उपलब्ध हो सके। वातानुकूलित कक्ष आदि के बिना भी काम चल सकता है, इस तरह की व्यवस्थाएं आरामदेह स्थितियां तो पैदा करती हैं परंतु सीखने–सिखाने में बहुत दूर तक साथ नहीं देतीं। वैसे भी अब तो शिक्षा का अधिकार कानून 2009 प्रत्येक स्कूल के लिए कुछ संसाधनों की अनिवार्यता की बात कहता है। जैसे प्रत्येक स्कूल में बालक एवं बालिकाओं के लिए शौचालय, पीने के साफ पानी की व्यवस्था, कक्षा–कक्ष में अनिवार्य सुविधाएं, पर्याप्त कक्ष, पुस्तकालय आदि। ये सब भौतिक सुविधाएं स्कूल में सीखने–सिखाने के लिए बेहतर वातावरण का निर्माण करती हैं। परंतु इनके साथ–साथ स्कूल को शैक्षिक प्रक्रियाओं पर भी ध्यान देने की बहुत अधिक आवश्यकता है और इनके लिए भी जिन संसाधनों की जरूरत है उन पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

कहने की कोशिश यह की जा रही है कि दोनों ही तरह के संसाधन किसी स्कूल के संचालन में और अच्छी शिक्षा की तरफ का रास्ता मुहैया करवा सकते हैं। परंतु ये भी सही बात है कि केवल इनके होने से ही अच्छी शिक्षा नहीं हो पाएगी, इसके लिए शिक्षक की पर्याप्त तैयारी पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है। जब शिक्षक इसके लिए तैयार होंगे तभी वे इन संसाधनों की मदद से बच्चों को समझकर सीखने के लिए अनिवार्य अवसर मुहैया करवा पाएंगे। परंतु

वर्तमान समय में तो हमारे यहां स्कूलों की भांति–भांति की श्रेणियां बन चुकी हैं।

इस स्थिति में अब सवाल यह उठता है कि जब तक आदर्श स्थितियां बनें यानी सभी स्कूल अच्छी शिक्षा मुहैया करवाना शुरू करें, तब तक अभिभावक इनमें से किस स्कूल में अपने बच्चे का दाखिला करवाना पसंद करेंगे। या उन्हें किस तरह के स्कूल में दाखिला करवाना चाहिए और वहां के शिक्षकों एवं संचालकों से किस तरह की अपेक्षाएं रखनी चाहिए। क्योंकि ये बातचीत एवं अपेक्षाएं भी एक तरह से दबाव समूह का काम करती हैं जो चीजों की दिशा तय करने में जरूरी होती हैं। वैसे तो इसका जवाब अलग–अलग लोगों से बातचीत करने पर शायद अलग–अलग मिले, जिस पर और अधिक सोचे जाने की जरूरत है परंतु मुझे इस तरह की बातचीतों में अक्सर ये लगता रहा है कि अपने बच्चे के लिए स्कूल का चुनाव करते समय अभिभावकों को केंद्र में दो चीजें मुख्य तौर पर रखनी चाहिए, पहली उस स्कूल की मौजूदा भौतिक संरचनाएं जैसे स्कूल बिल्डिंग एवं अन्य व्यवस्थाएं और दूसरी स्कूल द्वारा सीखने–सिखाने को लेकर चलाई जा रही शैक्षिक प्रक्रियाओं की प्रकृति। हालांकि यह एक मुश्किल सवाल है कि अभिभावक इन शैक्षिक प्रक्रियाओं को कैसे समझें या कैसे पता करें कि संबंधित स्कूल में किस तरह की प्रक्रियाएं संचालित होती हैं। चूंकि इनको समझने का बहुत सीधा–सा तरीका अभिभावकों के पास भी नहीं होता है और इसलिए इस पर शायद ही किसी का ध्यान जाता हो कि वहां सीखने–सिखाने की प्रक्रियाएं किस प्रकार की हैं और उनके द्वारा सीखना कितना दूरगामी, गुणवत्तापूर्ण एवं स्थायी होता है।

निश्चित तौर पर यह विडंबना है कि निजी स्कूलों में संसाधनों की चकाचौंध सामान्यतया गुणवत्ता की बहस को ढक देती है और अभिभावकों का आकर्षण बिंदु कुछ और चीजें हो जाती हैं। दूसरी तरफ बहुतायत सरकारी स्कूल मूलभूत सुविधाओं की कमी से जूझते रहे हैं। अतः इन दोनों का बेहतर तालमेल अभी तो एक चुनौती ही नजर आती है जिसका कोई हल नजर नहीं आता।

संदर्भ :

1. शिक्षा का अधिकार कानून 2009, 2. यशपाल समिति रिपोर्ट 1993
3. एन.सी.एफ. 2005

निशी : पिछले दस वर्षों से सामाजिक क्षेत्र में कार्यरत हैं। अलग–अलग संस्थाओं के साथ काम करने का अनुभव। वर्तमान में दिगंतर की अकादमिक संदर्भ इकाई (तरु) में बतौर एसोसिएट फैलो कार्यरत हैं। बच्चों व शिक्षकों के साथ प्रारंभिक शिक्षा के विभिन्न पहलुओं को लेकर कार्य करती हैं। विज्ञान में विशेष रुचि है।

आवश्यक सूचना

खोजें जाने पत्रिका के चौदह अंकों की यात्रा में हम लोगों ने बहुत कुछ सीखा–जाना, लेकिन सीखने–सिखाने की इस यात्रा को कुछ व्यवस्थागत कारणों के चलते अस्थायी विराम देना पड़ रहा है। अर्थात् कुछ समय के लिए पत्रिका का प्रकाशन स्थगित किया जा रहा है। पत्रिका का अगला अंक जनवरी 2017 में प्रकाशित होगा। असुविधा के लिए खेद है। यदि आप पत्रिका के वार्षिक सदस्य हैं तो आपकी सदस्यता जनवरी 2017 से आगे जारी रहेगी।